शैक्षणिक आकलन तथा सुधार के प्रयास

th- 'kdj

जबसे शिक्षा को व्यावसायिक वस्तु बना दिया गया है तबसे शिक्षा में सम्पन्न तथा विपन्न लोगों के दो भिन्न संसार बन गए हैं। सरकारी स्कूलों में शिक्षा की गुणवत्ता अभी भी बहुत निम्न स्तर की है और नई आकलन-आधारित पाठ्यपुस्तकें चला दी गई हैं जिनकी शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था से संगति नहीं बैठती। शिक्षा की वर्तमान व्यवस्था में 'सम्पन्न लोग' अत्यधिक जानकारी के युग में जीते हैं। सीखने के लिए इतना अधिक उपलब्ध है कि अनेक माता-पिता तथा शिक्षण प्रदान करने वाले बच्चों का कम उम्र में ही उच्च स्तर की अवधारणाओं से परिचय करवाकर उन्हें शुरुआती बढ़त देने का प्रयास करते हैं। बच्चों को तेज गति से आगे बढ़ाने में उनकी सीखने की स्वाभाविक इच्छा के मर जाने का जोखिम रहता है और बजाय आगे बढ़ने के उनके चिन्तित, उदास और दु:खी बन जाने का जोखिम बढ़ जाता है। 'सम्पन्न लोगों' के लिए बने स्कूल उच्च-शक्ति वाले भारी-भरकम पाठ्यक्रमों के माध्यम से दबाव डालते हैं तथा माता-पिता बच्चों को लगातार दौड़ाते रहने की जरूरत महसूस करते हैं ताकि उनके बच्चे इस भागती हुई प्रतिस्पर्धात्मक शिक्षा से बाहर न हो जाएँ।

बच्चों की सीखने की उपलब्धि को मापने की किसी व्यवस्था का लक्ष्य शिक्षकों तथा स्कूलों को सतत रूप से उचित शैक्षणिक प्रक्रियाएँ विकसित करने के लिए उत्साहित और प्रेरित करना होता है। इनका समग्र उद्देश्य स्कूल के वातावरण तथा स्कूल के भीतर चलने वाली उन गतिविधियों को, जो सभी बच्चों को अपेक्षित सार्थक योग्यताएँ हासिल करने में सक्षम बनाती हैं, इस ढंग से संचालित करना होता है जो उनके रोजमर्रा के उपयोगों के लिए प्रासंगिक हों।

भारतीय शिक्षा व्यवस्था में 'मूल्यांकन' का सम्बन्ध परीक्षा, तनाव और चिन्ता से जुड़ा रहता है। यदि पाठ्यक्रमों के नए दृष्टिकोण गहरी जड़ों वाली परीक्षा की व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष नहीं करते हैं, तो वे असफल हो जाते हैं। गहरी जड़ों वाली यह व्यवस्था एक आनन्दपूर्ण वातावरण में ज्ञान के स्वाभाविक प्रवाह को अवरुद्ध करती है। शिक्षा के रास्ते की इन बाधाओं को पार करने के लिए विश्वसनीय और सतत विकसित हो रही जानकारी का उपलब्ध होना बेहद जरूरी है, ताकि :

- व्यक्तिगत रूप से विद्यार्थियों की अकादमिक तथा व्यवहार-सम्बन्धी आवश्यकताओं को पहचाना जा सके।
- समस्या के समाधान की प्रक्रिया को जानकारी का आधार मिल सके।
- शिक्षा को विद्यार्थियों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए निर्मित तथा संशोधित किया जा सके।
- शिक्षा की प्रभावशीलता का व्यवस्था के विभिन्न स्तरों (उदाहरण के लिए कक्षा, स्कूल, जिला) पर मूल्यांकन किया जा सके।

पर अभी भी सर्वोपरि महत्त्व एक ऐसी दक्ष व्यवस्था के होने का है जो अधिकाधिक रूप से सीमित होते जा रहे संसाधनों का सबसे कारगर ढंग से उपयोग करे। इसलिए स्कूली आकलन एक बहु-स्तरीय सीढ़ीनुमा व्यवस्था का उपयोग करता है जिसमें आकलनों की आवृत्ति तथा उनकी तीव्रता आवश्यकताओं के प्रकट होने के हिसाब से बढ़ती है। समय से किए जाने वाले विश्वसनीय आकलन दर्शाते हैं कि कौन-से विद्यार्थी महत्त्वपूर्ण कौशलों में पीछे छूट रहे हैं या किन विद्यार्थियों के सीखने की गति

को बढ़ाए जाने की जरूरत है। साथ ही वे शिक्षकों को सीखने की आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षा के स्वरूप को गढ़ने का अवसर देते हैं। सीखने और व्यवहार में विद्यार्थियों की प्रगति के नियमित आकलन से शिक्षक पहचान सकते हैं कि किन विद्यार्थियों को अधिक सहायता की आवश्यकता है, कौन-से विद्यार्थियों की अतिरिक्त सहायता के बिना अच्छी तरह प्रगति करने की सम्भावना है और कौन-से विद्यार्थियों के सीखने की गति को तेज किए जाने की आवश्यकता है।

एक कारगर आकलन योजना के चार मुख्य उद्देश्य होते हैं:

1. वर्ष के प्रारम्भ में उन विद्यार्थियों की पहचान करना जो संकट में हैं या जिनको कठिनाइयों का अनुभव हो रहा है। इन्हें यदि वर्ष के अन्त तक ठीक ग्रेड-स्तर तक प्रगति करना है तो उनके लिए अतिरिक्त शिक्षण की या गहन प्रयासों की आवश्यकता हो सकती है। साथ ही ऐसे विद्यार्थियों की पहचान भी करना जो निर्दिष्ट मानदण्डों तक पहुँच चुके हैं और जिन्हें चुनौतीपूर्ण कार्य दिए जाने की जरूरत है।

2. वर्ष के दौरान सभी विद्यार्थियों की प्रगति की निगरानी करना ताकि यह पता चलता रहे कि संकटग्रस्त विद्यार्थी महत्त्वपूर्ण कौशलों में पर्याप्त प्रगति कर रहे हैं या नहीं। साथ ही ऐसे विद्यार्थियों की पहचान भी हो जो पीछे छूट रहे हैं या जिनको अतिरिक्त चुनौती दिए जाने की जरूरत है।

3. अलग-अलग विद्यार्थियों की जरूरतों को पूरा करने के लिए उनके बारे में उपलब्ध जानकारी के आधार पर शैक्षणिक नियोजन करना।

4. इसका मूल्यांकन करना कि प्रदान की गई शिक्षा तथा सुधार के प्रयास वर्ष के अन्त तक सभी विद्यार्थियों को अच्छे ग्रेड स्तर को हासिल करने के लिए पर्याप्त रूप से शक्तिशाली हैं या नहीं।

ऊपर बताए गए चारों उद्देश्य चार प्रकार के आकलनों से हासिल किए जा सकते हैं : 1. छानबीन करना (स्क्रीनिंग), 2. प्रगति की निगरानी करना, 3. निदानात्मक तथा 4. परिणामात्मक। वे मोटे तौर पर उपरोक्त चारों उद्देश्यों के अनुरूप होते हैं, लेकिन वे सभी कारगर शिक्षण और सुधार के प्रयासों की योजना बनाने में सहायता करने का योगदान दे सकते हैं।

छानबीन करने वाले आकलन : छानबीन करने वाले आकलन समग्र योग्यता तथा उन महत्त्वपूर्ण कौशलों को शीघ्र तथा दक्षतापूर्वक मापते हैं जो विद्यार्थियों के प्रदर्शन के बारे में पहले से दिखने वाले मजबूत संकेतों के रूप में जाने जाते हैं। सभी विद्यार्थियों के लिए एक प्रारम्भ-रेखा के रूप में किए जाने वाले ये आकलन उन विद्यार्थियों को पहचानने में मदद करते हैं जो या तो ग्रेड-स्तरीय अपेक्षाओं को पूरा नहीं करते या उनको जिनकी योग्यता उन अपेक्षाओं से अधिक है। इनके परिणामों को शिक्षण के लिए एक प्रारम्भ-बिन्दु के रूप में या अतिरिक्त मूल्यांकन की आवश्यकता के सूचक के रूप में उपयोग किया जा सकता है।

प्रगति की निगरानी करने वाले आकलन : प्रगति की निगरानी करने वाले आकलन भी संक्षिप्त होते हैं, लेकिन ये समय-समय पर यह पता करने के लिए किए जाते हैं कि विद्यार्थी पर्याप्त प्रगति कर रहे हैं या नहीं। प्रगति की निगरानी करने वाले आकलनों के आँकड़े निरन्तरता बनाए रखते हुए निम्नलिखित उद्देश्यों के लिए एकत्रित, मूल्यांकित तथा उपयोग किए जाना चाहिए-

- किसी विद्यार्थी की प्रगति की दर ज्ञात करना
- शिक्षण की प्रभावशीलता के बारे में जानकारी प्रदान करना और उसके आधार पर यदि आवश्यक हो तो प्रयास में संशोधन करना
- अतिरिक्त जानकारी की आवश्यकता को पहचानना
- मानदण्डों तथा उपलब्धियों के बीच के अन्तरों का विश्लेषण और व्याख्या करना।

निदानात्मक आकलन : हालाँकि निदानात्मक आकलन अपेक्षाकृत लम्बे होते हैं, परन्तु वे तय कौशलों का

गहराई से भरोसेमन्द आकलन प्रदान करते हैं। उनका मुख्य प्रयोजन अधिक कारगर शिक्षण तथा सुधार के प्रयास के नियोजन के लिए जानकारी प्रदान करना होता है। निदानात्मक आकलन तब किए जाना चाहिए जब इसकी स्पष्ट आशा हो कि वे किसी बच्चे की अकादमिक या व्यवहार-सम्बन्धी जरूरतों के बारे में ऐसी नई या अतिरिक्त जानकारी देंगे जिसका उपयोग अधिक शक्तिशाली शिक्षण या सुधार के प्रयासों की योजना बनाने में सहायता के लिए किया जा सकता है।

यदि स्कूल छानबीन करने वाले, प्रगति की निगरानी करने वाले और परिणामात्मक आकलनों का क्रियान्वयन विश्वसनीय तथा उचित तरीके से कर रहे हों, तो औपचारिक निदानात्मक उपकरणों का इस्तेमाल करते हुए अतिरिक्त परीक्षण की जरूरत घट जाना चाहिए। चूँकि वे बहुत समय लेने वाले तथा खर्चीले होते हैं, इसलिए अन्य आकलनों की अपेक्षा पूर्ण निदानात्मक आकलन बहुत कम बार किए जाना चाहिए। परन्तु, निदानात्मक उपकरणों से निकाली गई उप-परीक्षाओं का उपयोग उन क्षेत्रों के बारे में जानकारी प्रदान करने के लिए किया जा सकता है जिनका मूल्यांकन छानबीन करने, प्रगति की निगरानी करने या परिणामात्मक आकलनों में नहीं होता। स्कूल के नेतृत्व को निरन्तर यह पूछते रहना चाहिए कि औपचारिक निदानात्मक परीक्षाओं के संचालन में लगने वाले समय की तुलना में ऐसी परीक्षाओं से शिक्षकों को प्राप्त होने वाली जानकारी का शिक्षण की योजना बनाने के लिए समुचित मूल्य है या नहीं।

परिणामात्मक आकलन : परिणामात्मक आकलन, जो स्कूली वर्ष के अन्त में किए जाते हैं, ज्यादातर महत्त्वपूर्ण परिणामों (उदाहरण के लिए सी.एस.ए.पी) वाली सामूहिक रूप से संचालित की जाने वाली परीक्षाएँ होती हैं। परिणामात्मक आकलनों का उपयोग अक्सर स्कूल, जिला तथा राज्य की रिपोर्टों में उल्लेख करने के प्रयोजनों के लिए किया जाता है। ये परीक्षाएँ महत्त्वपूर्ण होती हैं क्योंकि ये स्कूल के नेतृत्व तथा शिक्षकों को उनके शैक्षणिक कार्यक्रम की समग्र प्रभावोत्पादकता के बारे में फीडबैक देती हैं। एक कारगर मूल्यांकन योजना के हिस्से के रूप में परिणामात्मक आकलनों को हर वर्ष के अन्त में आयोजित किया जाना चाहिए।

आकलन का वर्तमान परिदृश्य

भारत में स्कूली शिक्षा के आकलन तथा मूल्यांकन की वर्तमान व्यवस्था परीक्षा-आधारित है। इसलिए, उसका ध्यान केवल संज्ञानात्मक ढंग से सीखने के परिणामों पर ही केन्द्रित रहता है। इस प्रक्रिया में पाठ्यक्रमेतर (को-करीकुलर) क्षेत्र उपेक्षित रह जाते हैं। हालाँकि को-करीकुलर क्षेत्र भी बच्चे के विकास के समान रूप से महत्त्वपूर्ण अंग होते हैं। पाठ्यक्रम के क्षेत्रों में भी जोर रटकर सीखने और याद रखने पर रहता है, जिसका परिणाम उच्चतर मानसिक योग्यताओं, जैसे कि समीक्षात्मक सोच, समस्याओं का समाधान करना तथा सृजनात्मक योग्यता आदि की उपेक्षा के रूप में दिखाई देता है।

भारत में, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005, ने शिक्षा के हर क्षेत्र की पड़ताल की है। यह दस्तावेज कहता है कि मूल्यांकन तथा आकलन के सन्दर्भ में परीक्षाओं में सर्वांगीण सुधारों की आवश्यकता है। सीखने वालों में असफल रहने वाले विद्यार्थियों की ऊँची दर, स्कूल छोड़ देने वाले विद्यार्थियों की बढ़ती हुई संख्या, अस्वास्थ्यप्रद स्पर्धा, तनाव, मानसिक रूप से टूटने (नर्वस ब्रेकडाउन) तथा आत्महत्याओं के मामले भारतीय शिक्षाशास्त्रियों के लिए देश की मूल्यांकन व्यवस्था, जो वर्तमान में परीक्षा-उन्मुख है, की पड़ताल करना अनिवार्य रूप से आवश्यक बना देते हैं।

समय की माँग हमारे युवा सीखने वालों को, रटकर सीखने वालों के बजाय, समस्याओं को सुलझाने वाले अभिनव विचारकों के रूप में तैयार करने की है। परन्तु, परीक्षा की वर्तमान व्यवस्था बिलकुल लचीली नहीं है। यह 'एक ही साइज सबको माफिक बैठ जाती है' के सिद्धान्त पर आधारित है, जिसमें सीखने वाले के व्यक्तित्व और सृजनात्मकता पर ध्यान नहीं दिया जाता। यह सीखने वालों के वास्तविक अन्तर्निहित सामर्थ्य को

मापने में असफल रहती है और विद्यार्थियों को दिए जाने वाले अंक दरअसल कच्चे अंक होते हैं जो सीखने वालों की असली तस्वीर पेश नहीं करते। स्कूल अन्त की परीक्षाओं, जो बोर्ड परीक्षाएँ कहलाती हैं, के ढर्रे का ही स्कूलों में भी पालन किया जाता है और वहाँ भी जोर अंकों पर ही होता है, जिसके चलते शिक्षा का पूरा उद्देश्य ही विफल हो जाता है। परीक्षा के इस प्रतिकूल प्रभाव ने सिखाने तथा सीखने के शैक्षणिक सिद्धान्तों को खासी क्षति पहुँचाई है।

इस विकृति को सुधारने के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2005 ने कुछ मार्गदर्शक सिद्धान्त प्रस्तावित किए हैं, जो इस प्रकार हैं:

- ज्ञान को स्कूल के बाहर के जीवन से जोड़ना,
- यह सुनिश्चित करना कि सीखने को रटने की पद्धतियों से दूर कर लिया जाए,
- पाठ्यचर्या के पाठ्यपुस्तक पर केन्द्रित रहने के बजाय उसको बच्चों को समग्र विकास प्रदान करने के लिए समृद्ध बनाना,
- परीक्षाओं को अधिक लचीला बनाना तथा उनको कक्षा के जीवन में समेकित करना, तथा
- फिक्र करने योग्य सरोकारों के आधार पर देश की लोकतांत्रिक राज्य-व्यवस्था के भीतर विद्यार्थी की एक सर्वोपरि राष्ट्रीय पहचान को पोषित करना।

इन मार्गदर्शक सिद्धान्तों से सीखने-सिखाने के दृष्टिकोण में, पारम्परिक पद्धतियों से एक स्पष्ट परिवर्तन, अर्थात व्यवहारवाद (बिहेवियरिज्म) से रचनात्मकतावाद (कंस्ट्रक्टिविज्म) की ओर बदलाव दिखाई देता है। शिक्षण का नया दृष्टिकोण सीखने वाले पर केन्द्रित है और आकलन की प्रक्रिया का लक्ष्य भी सीखने वालों की समग्र प्रगति पर गौर करते हुए उनकी सीखने की क्षमताओं में वृद्धि करना होता है। दृष्टिकोण में आया यह परिवर्तन अपने आप में आकलन के उपकरणों तथा तकनीकों में बड़े बदलाव की माँग करता है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2005 ने सीखने-सिखाने के दृष्टिकोण में पुराने व्यवहारवाद के दृष्टिकोण से रचनात्मकतावाद के दृष्टिकोण की ओर परिवर्तन प्रस्तावित किया है। व्यवहारवाद के दृष्टिकोण के अन्तर्गत विद्यार्थी की उपलब्धि का निर्धारण याददाश्त के आधार पर होता था, जिसके परिणामस्वरूप उच्चतर संज्ञानात्मक (मेटा-कॉग्नीटिव) कौशलों, जैसे कि समीक्षात्मक सोच, तर्क क्षमता तथा समस्याओं को सुलझाने की क्षमता पूरी तरह उपेक्षित रह जाती थीं।

दूसरी ओर, रचनात्मकतावाद की मान्यता है कि सीखना एक सक्रिय प्रक्रिया है जिसमें अर्थ अनुभव के आधार पर विकसित होता है, और यह भी कि सीखने को वास्तविक स्थितियों में स्थापित किया गया होना चाहिए, उसे सामाजिक आदान-प्रदान को बढ़ावा देना चाहिए और सीखने की विश्वसनीय सामग्री/कार्यों का उपयोग करना चाहिए। एक रचनात्मकतावाद कक्षा में सीखने की प्रक्रिया में विद्यार्थियों को पहल करने के लिए प्रेरित किया जाता है। विद्यार्थियों को प्रश्न पूछने, मुक्त रूप से पारस्परिक क्रियाकलाप करने और स्वतंत्र सोच विकसित करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। और यह फिर उनको समीक्षात्मक विचार-क्षमता तथा समस्याओं को सुलझाने का दृष्टिकोण विकसित करने में मदद करता है। इस पद्धति के अंग के रूप में, विद्यार्थियों से उत्तरों की खुली सम्भावनाओं वाले तथा जानकारी के अनुमानित विस्तार पर आधारित प्रश्न पूछे जाते हैं और उनके विचारों को समुचित मान्यता दी जाती है।

सामूहिक कार्य तथा जोड़ों में किए जाने वाले कार्य को प्रोत्साहन दिया जाता है, क्योंकि विचारों का आदान-प्रदान अवधारणात्मक स्पष्टता तथा भाषा सीखने में सहायता करता है। रचनात्मकतावादी पद्धति इस मान्यता पर आधारित है कि सभी मनुष्य अपना ज्ञान स्वयं निर्मित करते हैं, और सही अवसर तथा वातावरण दिए जाने पर सीखने वाले अपने ज्ञान की रचना स्वयं कर सकेंगे। शिक्षण की यह नई पद्धति अपने साथ ही स्कूलों में आकलन के तरीकों में भी संगत परिवर्तनों की माँग करती है।

Bibliography:

Alderson, J. C. (2000). Assessing Reading. Cambridge: Cambridge University Press, 203

Assessment Reform Groups.(1999). Beyond the Black Box. Cambridge: University of Cambridge School of Education.

(http://english.unitecnology.ac.nz/resources/units/assessment.html)

Chater, Pauline. (1984). Marking and assessment in English. London: Routledge, 3

Hamp-Lyons, L. and Condon, W. (2000).Assessing the portfolio: Principles for practice theory and research. Cresskill, NJ: Hampton Press, 32-33.

शंकर *वर्तमान में बिहार के बेगूसराय में शाहपुर के जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान के प्राचार्य हैं। सिखाने–सीखने की प्रक्रियाओं में उनकी गहरी रुचि होने के कारण वे पिछले 25 वर्षों से शिक्षक प्रशिक्षक के रूप में कार्य कर रहे हैं। उनसे g_shankar_2007@yahoo.co.in पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद** : सत्येन्द्र त्रिपाठी*